विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५४४, कार्तिक पूर्णिमा, ११ नवंबर, २००० वर्ष ३० अंक ४/५

धम्मवाणी

सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह।
अज्झत्तं च बहिद्धा च, यं किञ्चि अत्थि वेदितं॥

एतं दुक्खन्ति ञत्वान, मोसधम्मं पलोकिनं।
फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत्थ विजानति।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्छातो परिनिब्बुतो॥

सु. नि. ७४३-७४४

बाहर और भीतर जो भी संवेदनाएं महसूस होती हैं वे चाहे सुखद हों या दुःखद अथवा अदुःखद-असुखद, साधक उनकी मिथ्या भ्रांति को नष्ट करता है और अनुभव करता है कि वस्तुतः उनमें दुःख ही समाया हुआ है। जहां स्पर्श होता है और स्पर्शजन्य संवेदना होती है, वहां उसके अनित्य स्वभाव को अनुभव कर उससे विरक्त होता है और इस प्रकार अभ्यास करता हुआ साधक उस स्थिति में पहुँच जाता है जहां कि वह समस्त संवेदनाओं का क्षय और तृष्णा का उन्मूलन कर परम उपशांत हो जाता है; परिनिर्वाण प्राप्त कर लेता है।

[धारण करे तो धर्म]

क्षणभंगुर संसार

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की **सोलहवीं कड़ी**)

शील, समाधि, प्रज्ञा; शील, समाधि, प्रज्ञा – इन तीनों में धर्म की परिपूर्णता समायी हुई है। (साधक) शील का पालन करते हुए, समाधि में पुष्ट होते हुए प्रज्ञा जगाने का काम करता है तो शरीर पर होने वाली संवेदनाओं को समता से देखने का प्रयास करता हुआ अपनी प्रज्ञा जगाता है। यानी प्रत्यक्ष ज्ञान जगाता है अर्थात सच्चाई को अनुभूतियों के स्तर पर जानता है। पहले अनित्यबोधिनी प्रज्ञा अर्थात अनित्य का बोध जागता है। यह सारा शरीर प्रपंच, यह सारा चित्त प्रपंच कितना अनित्य है, कितना भंगुर है, कितना नश्वर है! यह बात केवल परंपरागत मान्यताओं के आधार पर स्वीकार नहीं कर रहा, केवल श्रद्धा के आधार पर या केवल बुद्धि के बल पर स्वीकार नहीं कर रहा। अनुभूतियों से जान रहा है कि यह सारा शरीर प्रपंच, सारा चित्त प्रपंच, जहां अनुभव करें वहीं उदय-व्यय, उदय-व्यय। उत्पन्न होता है, नष्ट होता है; उत्पन्न होता है नष्ट होता है। कितनी शीघ्र गति से उत्पन्न होता है, नष्ट होता है; उत्पन्न होता है, नष्ट होता है। यह अनित्यबोधिनी प्रज्ञा जितनी-जितनी पुष्ट होती जाती है, उतनी-उतनी यह क्षमता प्रदान करती है कि अब दुःखबोधिनी प्रज्ञा जागने लगती है। अनित्यबोधिनी प्रज्ञा के आधार पर ही दुःखबोधिनी प्रज्ञा जागती है।

बाहर की दुनिया में भिन्न-भिन्न कारणों से जो दुःख हैं, उनको बुद्धि से समझते ही हैं, पर अब अपनी इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर सत्य का दर्शन कर रहे हैं, अनुभूति से जान रहे हैं – दुःख है। शरीर पर होने वाली इन संवेदनाओं का दर्शन करते-करते कभी-कभी बहुत दुःखद संवेदना जागती है, बड़ी पीड़ा है, बड़ा भारीपन है, बड़ा तनाव है, बड़ी गर्मी है। दुःखद ही दुःखद; दुःखद ही दुःखद। तो अनुभव से जानता है – दुःख है। लेकिन इतने से ही दुःखबोधिनी प्रज्ञा का जागरण जैसे होना चाहिए, वैसे नहीं हुआ। ये तो स्थूल-स्थूल दुःखद संवेदनाएं हैं।

साधक आगे बढ़ता है तो देखता है कि बींधती हुई प्रज्ञा द्वारा जब इनका विभाजन होता है, विघटन होता है तब इनके टुकड़े होते-होते, यही सूक्ष्म संवेदनाओं में पलट जाती हैं। चारों ओर तरंगें ही तरंगें, तरंगें ही तरंगें; तो बड़ा आनंद मालूम होता है, बड़ा सुख मालूम होता है। सारा शरीर और सारा मानस पुलक रोमांच से भर उठता है। अरे, बड़ा आनंद आया, बड़ा आनंद आया। मुझे मोक्षानंद मिल गया, मुझे मुक्तानंद मिल गया, आत्मानंद मिल गया, परमात्मानंद मिल गया, ब्रह्मानंद मिल गया, और न जाने कैसा आनंद, बस आनंद ही आनंद, आनंद ही आनंद है। तो साधक अपने मार्गदर्शक के पास भागा-भागा आकर कहता है – 'अरे, आज तो कमाल हो गया। ऐसा आनंद, ऐसा आनंद! इतनी जल्दी ऐसे आनंद की अनुभूति हो सकती है, हम कल्पना भी नहीं कर सकते थे। बस, मुझे तो जो चाहिए था, सो मिल गया।'

तो मार्गदर्शक कहेगा – नहीं भाई, अभी रुक! अभी यह शरीर और चित्त का ही क्षेत्र है, अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। इसे साक्षीभाव से देखता जा! तटस्थभाव से देखता जा! नहीं समझ में आती बेचारे को यह बात। पुस्तकें पढ़ी हैं, परंपराओं की बातें सुनी हैं – ध्यान करने से इतना आनंद आता है, इतना आनंद आता है। आ गया ना! और क्या चाहिए?

शाम होते-होते साधक फिर भाग कर अपने मार्गदर्शक के पास आता है – 'वह जो सबेरे आनंद आया था, वह अब नहीं आ रहा।

मेरी साधना खराब हो गयी। सुबह तो बड़ा अच्छा ध्यान लगा था। बड़ा अच्छा ध्यान लगा था। अब फिर पीड़ाएं जागने लगीं, भारीपन जागने लगा। सारी अप्रिय ही अप्रिय अनुभूतियां होने लगीं।'

तब मार्गदर्शक कहता है – अनित्य है ना भाई! तुम्हें जो सुखद अनुभूति हुई, वह नित्य नहीं थी, शाश्वत नहीं थी। शरीर और चित्त का ही क्षेत्र है और शरीर और चित्त का सारा क्षेत्र तो भंगुर है, नश्वर है, परिवर्तनशील है, बदलते रहता है, बदलते रहता है। पर ऐसी ही किसी अनुभूति को तूने आनंद मान करके उसके प्रति आसक्ति पैदा कर ली तो देख, दुःख आया ना! यह दुःख इसलिए आया क्योंकि जो आनंद नहीं है, जो सुख नहीं है उसे सुख मान करके तुमने उसके प्रति आसक्ति पैदा कर ली। आसक्ति नहीं पैदा करते तो इस समय यह उदासी नहीं आती ना! यह निराशा नहीं आती ना! यह दुःख की अनुभूति नहीं होती ना! इसलिए समझ! जो अनित्य है वह मेरे सुख का कारण कदापि नहीं हो सकता, हो ही नहीं सकता। जो अनित्य है, उसे मैं सुख मानने की कामना करूं, कल्पना करूं तो धोखा ही धोखा है। कभी होने वाली बात नहीं। तब बात समझ में आने लगती है कि सांसारिक शब्दों में जिसे सुख कहते हैं, क्योंकि वह काया और चित्त का ही क्षेत्र है, इंद्रियों का ही क्षेत्र है, इंद्रियातीत अवस्था नहीं है। नित्य, शाश्वत, ध्रुव अवस्था नहीं है इसलिए दुःख ही है, दुःख ही है। तब अनित्यबोधिनी प्रज्ञा के साथ-साथ दुःखबोधिनी प्रज्ञा जागती है, पुष्ट होती है; जागती है, पुष्ट होती है और एक समय ऐसा आता है जब अनात्मबोधिनी प्रज्ञा जागने लगती है, 'अनात्मबोध' जागता है।

बड़ा भ्रामक शब्द है यह 'अनात्म'। जैसे ही संप्रदायवादियों के, दार्शनिकों के हाथ में पड़ गया, इसका अर्थ ही बदल गया। विवाद का विषय हो गया। झगड़े का विषय हो गया। अरे, जब अपने भीतर देखेगा कि सब कुछ अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। परमाणुओं के पुंज के पुंज उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं; उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं। कलापों के पुंज के पुंज उत्पन्न होते हैं, नष्ट होते हैं। तरंगें ही तरंगें उत्पन्न होती हैं, नष्ट होती हैं। इन परमाणुओं के, इन कलापों के बीच भी, एक कलाप और दूसरे कलाप के बीच में पोल ही पोल, पोल ही पोल, इतना आकाश! यह पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल से बना एक कलाप और एक कलाप से दूसरे कलाप के बीच में इतनी पोल। ऊपर से इतना ठोस-ठोस लगने वाला शरीर, पर साधना करते-करते उस अवस्था पर पहुँच जायगा कि जहां पोल ही पोल, पोल ही पोल, शून्य ही शून्य। उस शून्य में बड़ी हल्की-सी कंपन चल रही है, बड़ी हल्की-सी कंपन। तो यहां भी उत्पन्न होता है, नष्ट होता है। तरंग ही तरंग, उत्पन्न होती है, नष्ट होती है। इसमें से किसको 'मैं' कहूं? यह सारा शरीर-स्कंध तरंग ही तरंग, बुदबुदे ही बुदबुदे। यह सारा चित्त-स्कंध तरंग ही तरंग, बुदबुदे ही बुदबुदे। कौन से बुदबुदे को पकड़ कर कहूं, यह 'मैं' हूं? वह नष्ट हो गया ना! तो क्या 'मैं' नष्ट हो गया? कौन-सी तरंग को पकड़ के कहूं, यह 'मैं' हूं? नष्ट हो गयी ना! तो 'मैं' नष्ट हो गया? अरे, कैसी भ्रांति! किसको 'मैं' कहूं? धोखा ही धोखा। यहां 'मैं' कहने के लिए कुछ नहीं है।

ऐसे ही किसको 'मेरा' कहूं? जिस पर मेरा आधिपत्य हो, जिस पर मेरा प्रभुत्व हो, जिस पर मेरी मल्कियत हो, वही तो मेरा न! पर कहां मल्कियत है? इस सारे शरीर-स्कंध पर कहां मेरी मल्कियत है? इस चित्त-स्कंध पर कहां मेरी मल्कियत है? उत्पन्न होता है, नष्ट होता है; उत्पन्न होता है, नष्ट होता है। परिवर्तन हुए जा रहा है, परिवर्तन हुए जा रहा है। मेरी मल्कियत हो तो मैं कहूं, रुक जा, बस, अब परिवर्तन नहीं होना चाहिए। या परिवर्तन हो तो इस प्रकार हो, या उस प्रकार हो। कौन सुनता है? परिवर्तन हुए जा रहा है, हुए जा रहा है। तब मेरा क्या हुआ? किन परमाणुओं के बुदबुदों को मुट्ठी में भींच करके कहूं कि यह मेरा है? कहां मेरा है? मेरा कहीं कोई आधिपत्य नहीं। धोखा ही धोखा, धोखा ही धोखा। अब बात समझ में आती है, खूब समझ में आती है, क्योंकि अनुभव कर रहा है। केवल बाहर-बाहर से बौद्धिक ज्ञान होता तो खूब बुद्धि-विलास करता – सारा संसार अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। अरे! फिर भी उसके प्रति इतनी आसक्ति है, इतना राग है, इतना द्वेष है! क्योंकि बोध नहीं जागा ना! प्रज्ञा नहीं जागी ना! प्रज्ञा जागे तो होश जागे।

जब प्रज्ञा नहीं जागती है तब क्या करता है? चालीस बरस के आसपास उम्र हुई, दर्पण में अपना मुँह देखता है। कनपट्टी के पास के बाल सफेद होने लगे तो भाग कर जाता है केमिस्ट की दूकान पर। काला रंग लेकर आता है, लगाता है। नहीं, मैं बूढ़ा नहीं हुआ। नहीं, मैं बूढ़ा नहीं हुआ। मैं अभी जवान हूं। अरे, तू किसको धोखा दे रहा है, लोगों को धोखा दिया चाहता है, दुनिया को धोखा दिया चाहता है? अपने आपको धोखा दिया चाहता है? अरे, इस कुदरत को कहां धोखा देने जाएगा रे! इस निसर्ग को कहां धोखा देने जाएगा रे! तू बूढ़ा हुए ही जा रहा है। तू जर्जरित हुए ही जा रहा है। तू अपनी मृत्यु की ओर भागे जा रहा है, भागे जा रहा है। प्रतिक्षण मृत्यु की ओर दौड़ लग रही है तेरी। यह होश कैसे जागे? इन अनुभूतियों से ही जागेगा!

अरे, यहां मेरा कहने के लिए कुछ नहीं। क्या मेरा? न 'मैं' है, न 'मेरा' है और न 'मेरी आत्मा' है। मेरी आत्मा! अरे, आत्मा है तो नित्य होगी, शाश्वत होगी, ध्रुव होगी। यहां तो कुछ भी नित्य नहीं, शाश्वत नहीं, ध्रुव नहीं। सारा क्षेत्र अनित्य ही अनित्य, नश्वर ही नश्वर, भंगुर ही भंगुर, तरंगें ही तरंगें, बुदबुदे ही बुदबुदे। इसको आत्मा मानूं तो देहात्म बुद्धि आयी ना! देह को आत्मा मान बैठा। चित्तात्म बुद्धि आयी ना! चित्त को आत्मा मान बैठा। अरे, तो सच्चाई से दूर हो गया। जो नित्य नहीं है, शाश्वत नहीं है, ध्रुव नहीं है, उस पर नित्य, शाश्वत, ध्रुव का आरोपण करूं, कल्पना करूं। अब क्योंकि हमारे संप्रदाय की दार्शनिक मान्यता ऐसा मानती है, महज इसीलिए उस मान्यता को भला कैसे आरोपित कर लूं? यहां तो सारे शरीर में तरंगें ही तरंगें हैं, तो क्या यही आत्मा है? अरे, होश जागता है तो देखता है, क्या आत्मा है? बदल रहा है ना! देख, बदल रहा है ना! अरे, अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। वह आत्मा नहीं है, खूब समझ में आने लगता है। यह 'अनात्मबोध' पुष्ट होता है।

जब अनित्यबोध, दुःखबोध, अनात्मबोध पुष्ट होता है तब प्रज्ञा के साथ-साथ बुद्धि का भी विकास होता है। जो व्यक्ति केवल बहिर्मुखी है, बाहर की दुनिया को देख करके अपनी बुद्धि का विकास कर रहा है, वह बुद्धिमान होगा। लेकिन जो व्यक्ति भीतर की सच्चाई को देख करके प्रज्ञा जगा रहा है, भीतर काया में स्थित हो करके अपनी प्रज्ञा जगा रहा है, वह कायस्थ है। कायस्थ है तो प्रज्ञावान भी है और प्रज्ञावान ही नहीं, बुद्धिमान भी अधिक हो गया। क्योंकि बाहर की बातें भी खूब समझने लगा और भीतर की बातें भी खूब समझने लगा।

यह सारा शरीर परमाणुओं का पुंज, बुदबुदों का पुंज, यह

परमार्थ सत्य है। इसमें 'मैं' कहने को कुछ नहीं, मेरा कहने को कुछ नहीं। फिर भी व्यवहार जगत में तो 'मैं' 'मेरा' कहना ही पड़ेगा। अन्यथा लोगों के साथ बर्ताव कैसे करेगा? यह परमाणुओं का पुंज, यह बुदबुदों का पुंज, उस बुदबुदे के पुंज को यूं बोल रहा है, तो काम कैसे चलेगा? व्यवहारजगत के लिए 'मैं, मेरा, तू, तेरा' कहना पड़ेगा, पर वास्तविकता को भी खूब समझता रहेगा – अरे यह सारा तो भंगुर क्षेत्र है, अनित्य क्षेत्र है। कहीं इसके प्रति आसक्ति न हो जाय, कहीं इसके प्रति चिपकाव न हो जाय। यूं होश जागेगा।

यह होश कैसे जागा? यह जो विपश्यना आरंभ की कि पहले सांस से काम आरंभ करते-करते सारे शरीर की यात्रा करने लगे। पहले स्थूल-स्थूल, घनीभूत संवेदनाओं का दर्शन करते-करते, उसे साक्षीभाव से जानते-जानते इस अवस्था पर आ गये कि जहां विभाजन होते-होते, विघटन होते-होते, विश्लेषण होते-होते सारी बात समझ में आने लगी। जहां घनत्व का नामोनिशान नहीं रह गया। तरंगें ही तरंगें, बुदबुदे ही बुदबुदे। यह सच्चाई है। यह जो स्थूल शरीर ठोस लग रहा है, यह प्रकट सत्य है, भासमान सत्य है और जो तरंगें ही तरंगें हैं, बुदबुदे ही बुदबुदे हैं, परमाणु ही परमाणु हैं, वह परमार्थ सत्य है। दोनों के प्रति होश रखता है। होश न रखे और ऐसे प्रवचनों की बात सुन करके या वैज्ञानिकों की बात सुन करके कि समस्त ब्रह्मांड तरंगों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। सब तरंगें ही तरंगें हैं। यह पेड़ है ना! बस तरंगें ही तरंगें हैं। यह मेरा पांव या शरीर भी तरंगें ही तरंगें हैं तो मारो ठोकर। तरंगों में से तरंग निकल जाएगी, मुझे क्या लगेगा? मारो उसके टक्कर। अरे, तो सिर टूट जाएगा, तेरा पांव टूट जाएगा। बाहर का होश रहना चाहिए। बुद्धि भी काम करे, प्रज्ञा भी काम करे।

यह भीतर की सच्चाई इसलिए देख रहे हैं कि इसके प्रति कहीं आसक्ति न जग जाय। इसको सुखद मान करके इसके प्रति राग न जगाने लगें। इसे दुखद मान कर इसके प्रति द्वेष न जगाने लगें। यह होश जागे। साक्षीभाव से, तटस्थभाव से देख रहे हैं। मन समता में स्थित है, मन का संतुलन कायम है। अब जीवन कितना सुखद हो जाएगा। अच्छा जीवन जीने लगेंगे, जीवन जीने की कला आने लगेगी। बाह्य जगत में भी बुद्धि का प्रयोग करते हुए अब हर बात के टुकड़े कर-करके देखेंगें। विभाजन कर-करके देखेंगे। विघटन कर-करके देखेंगे। उसका विश्लेषण कर-करके देखेंगे और खूब समझेंगे। ऐसा नहीं करता तो संगठन की अपनी एक माया है, संश्लिष्ट होने की अपनी एक माया है। टुकड़े-टुकड़े कर-करके अलग हो तो माया दूर होती है। ऐसा नहीं करता है तो एक पुरुष एक नारी के संगठित शरीर को देख करके कहता है बहुत खूबसूरत, अरे, बहुत खूबसूरत। एक नारी एक पुरुष के शरीर को देख करके कहती है, अरे, बहुत खूबसूरत, बहुत खूबसूरत।

लेकिन जब प्रज्ञा और बुद्धि दोनों जागती है तब देखें, जरा टुकड़े कर-करके देखें कि क्या खूबसूरत है? सिर से शुरू करता है, ये बाल खूबसूरत हैं। कोई कवि हो तो ये कोमल, कुंतल, अलकावली, न जाने कितने शब्दों का प्रयोग करे। घरवाली बेचारी को सुबह-सुबह काम में लगना होता है। नाश्ता बनाने बैठी और यह सिर पर का एक बाल नाश्ते में गिर गया। लाकर परोसा और देख लिया उसने, यह तो सिर का बाल है। अब भंवरजी चीख पड़े, यह बाल, गंदा बाल मेरे नाश्ते में! अरे, सारी शाम, सारी रात प्रशंसा के गुण गा रहा था – बहुत खूबसूरत, बहुत खूबसूरत। यह खूबसूरत बाल तेरे नाश्ते में आया, खा ना! क्यों चीखता है? अरे, जब तक लगा हुआ था तब तक खूबसूरत था। अलग होते ही खूबसूरती समझ में आ गयी। खूबसूरत नहीं है। वास्तविकता समझ में आ गयी।

इस खूबसूरती का निरीक्षण करते हुए आगे चलें, सिर से आगे बढ़ें। दांतों पर आये, बड़े खूबसूरत दांत। अरे, मोतियों की सी पंक्तियां, मोतियों की सी पंक्तियां। एक दांत टूटा, मोती आया ना, रख तिजोरी में? अरे नहीं, हड्डी का टुकड़ा, फेंकता है। वह जब तक लगा था तब तक मोती था। अलग होते ही हड्डी का टुकड़ा हो गया। क्या खूबसूरती हुई? अच्छा और आगे चलें। ये नाखून, कितने खूबसूरत! ये नाखून और देखो, इन नाखूनों पर कैसी नैलपालिश लगा रखी है, चमड़ी के रंग से मेल खाती हुई नैलपालिश और साड़ी के रंग से मेल खाती हुई नैलपालिश। अरे, बड़ी खूबसूरत, बड़ी खूबसूरत। बेचारी घरवाली नाखून कुतर रही थी, दो-चार टुकड़े नाखून के भोजन में गिर गये और जब भोजन परोसा गया तो देखता है, अरे! ये गंदे नाखून मेरे भोजन में! सारा भोजन खराब कर दिया। अरे, खूबसूरत नैलपालिश वाला नाखून और ये खूबसूरत बढ़िया भोजन, दोनों मिल कर डबल खूबसूरत हुए, खा ना! काहे चीखता है? होश नहीं है ना। जब तक शरीर से लगा था तब तक खूबसूरत है, अलग होते ही कोई खूबसूरती नहीं।

यह तो गनीमत मानो कि प्रकृति ने, निसर्ग ने या यों कहें कि परमात्मा ने हम पर बड़ी कृपा कर दी, नहीं तो जो कुछ भीतर है वह यदि बाहर होता और जो बाहर है वह भीतर होता तो क्या हालत होती? डंडा लिये हुए कुत्तों से, बिल्लियों से, गिद्धों से, चीलों से, कौओं से जान छुड़ानी मुश्किल हो जाती। क्या खूबसूरत है भीतर? नौ दरवाजे हैं शरीर के, क्या खूबसूरती निकलती है? कुछ हो खूबसूरत तब तो निकले ना! इन पोरों में से भी क्या खूबसूरती निकलती है? किसको खूबसूरत कहे जा रहा है?

इसका मतलब यह नहीं कि हर किसी व्यक्ति को देख कर कहेगा कि अरे, तू गंदा! अरे, तू बुदबुदों का पुंज! तो होश नहीं आया। मैं भी तो वैसा ही, मैं भी तो वैसा ही। प्रज्ञा जागेगी तो होश जागेगा। प्रज्ञा जागेगी तो धर्म जागेगा। प्रज्ञा जागेगी तो चित्त में निर्मलता जागेगी। निर्मलता जागेगी तो मैत्री जागेगी, करुणा जागेगी, सद्भावना जागेगी, प्यार ही प्यार जागेगा। किसी के प्रति घृणा जाग ही नहीं सकती। तब प्रज्ञा बलवती हुई। अन्यथा बुद्धि के बल पर हजार बातें करते रहें, उसका असर जीवन में नहीं आया। लाभ नहीं हुआ ना! जीवन में सचमुच धर्म उतरा तो शील भी पुष्ट हुआ, समाधि भी पुष्ट हुई, प्रज्ञा भी पुष्ट हुई और चित्त निर्मल हुआ। निर्मल चित्त का जीवन जीने लगा, जीने की कला आ गयी।

कैसे सुख-शांति से जीयें, कैसे ऐसा जीवन जीयें जिसमें हमारा भी मंगल हो, औरों का भी मंगल हो। हमारा भी कल्याण हो, औरों का भी कल्याण हो। आसक्त होकर जीयेंगे तो दुःखी हो जायेंगे और जब आदमी स्वयं दुःखी होता है तो आसपास के सारे वातावरण को दुःखी बनाता है। तो जीना नहीं आया ना! इसलिए धर्म धारण करना है। इसलिए धर्म में पुष्ट होना है। चित्त निर्मल होता चला जाय। खूब जाने, जबकि जो शरीर और चित्त का क्षेत्र है, सारी इंद्रियों का क्षेत्र है, यह अनित्य है, नश्वर है, भंगुर है। कहीं इसको अच्छा मान कर इसके प्रति राग न जग जाय। इसको बुरा मान कर कहीं इसके प्रति द्वेष न जग जाय, आसक्ति न जग जाय। अनासक्त भाव से संसार में जीना

है, सारे कर्तव्य पूरे करने हैं, सारे काम पूरे करने हैं। कहीं भी, किसी भी हालत में हम आसक्ति पैदा करेंगे तो दुखियारे हो जाएंगे। इसीलिए धर्म सीख रहे हैं। कोई कौतूहल पूरा करने के लिए नहीं सीख रहे। इसलिए नहीं कि देखें शरीर में क्या हो रहा है। कोई कहता है कि बुदबुदे ही बुदबुदे, देखें तो बुदबुदे हैं क्या? देखें तो तरंगें हैं क्या? अरे, इसलिए नहीं कर रहे। अनुभूति के स्तर पर होने वाली यह जानकारी हमारे चित्त को निर्मल करती है, विकारों से मुक्त करती है। मुक्त करती है तो जीना आ जाता है। धर्म में जितना-जितना पुष्ट होता चला जाय, जीवन जीने की कला आ जाय। धर्म में जो पुष्ट होता चला जाय, शील, समाधि, प्रज्ञा में जो पुष्ट होता चला जाय, उसका मंगल ही मंगल। उसका कल्याण ही कल्याण। उसकी स्वस्ति ही स्वस्ति। उसकी मुक्ति ही मुक्ति।

मंगल मृत्यु

हैदराबाद की श्रीमती कमला विजयचंद श्रीमाल, जो कि १९७५ पहले शिविर के बाद से सतत साधनारत रही, वहां के केंद्र पर बहुत प्रकार से धर्मसेवा दी और अनेक शिविरों में सम्मिलित होकर जीवन को सफल बना लिया था। पुत्री सुनीता ने बताया कि हृदयाघात के समय अस्पताल में अंतिम क्षणों तक शांत, सजग व मैत्रीचित्त युक्त ही रही। सब के प्रति मंगल कामना करते हुए अंतिम सांस लिया।

नव नियुक्तियां

सहायक आचार्य

१. श्रीमती शारदा रनजीतकार, नेपाल
२. श्रीमती तारा शाक्य, नेपाल
4-5. Mr German Cano & Mrs Martha Molina, Mexico
6. Mrs Virginia Gil del Real, Panama
7. Mr Robert Burt, New Zealand
8. Mrs Mithra Wijeweera, Sri Lanka

दोहे धर्म के

इस नश्वर संसार में, ध्रुव शाश्वत ना कोय।
पानी के से बुलबुले, भंग भंग ही होय॥

किसको मैं शाश्वत कहूं, नित्य अचल ध्रुव सार।
नष्ट होय ज्यों बुदबुदा, विषयों का व्यापार॥

नन्हा-सा परमाणु कण, या विशाल ब्रह्मांड।
नश्वर ही है मिट्टी कण, या मिट्टी का भांड॥

भूमंडल ग्रह उपग्रह, सूर्य चंद्र नक्षत्र।
सभी मृत्यु आधीन हैं, नश्वरता सर्वत्र॥

नित्य मान इस जगत को, जो खोजे सुख भोग।
उस मूरख को सुख कहां? दुख का ही संयोग॥

अणु अणु में परमाणु में, केवल कंपन होय।
ऐसा स्थिर कुछ भी नहीं, कंपहीन जो होय॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
• महालक्ष्मी मंदिर लेन, ८ महालक्ष्मी चैंबर्स, २२ वार्डन रोड, मुंबई-४०००२६.
☎-४९२३५२६. • सनस प्लाजा, शॉप ११-१३, १३०२, सुभाष नगर, पुणे-४११००२.
☎-४८६१९०. • दिल्ली- २९११९८५.• पटना- ६७१४४२. • वाराणसी- ३५२३३१.
• बैंगलोर- २२१५३८९.• चेन्नई- ४९८२३१५. • कलकत्ता- २४३४८७४
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

परिवर्तनमय जगत मँह, कुछ भी तो ध्रुव नांय।
समदर री सी लहरियां, उठ उठ गिरती जांय॥

एक गिरै दूजी उठै, समदर लहर समान।
चितधारा बहती रवै, सरित प्रवाह प्रमाण॥

आंध्यां उळझी बादळी, पल पल बिखरी जाय।
पाणी रा सा बुदबुदा, बण बण मिटता जाय॥

हर बसंत पतझण हुवै, रवै न सदा बहार।
हर जोबन जर जर हुवै, यो भंगुर संसार॥

काया ही तेरी नहीं, छुटसी हो निस्प्राण।
तो ई भौतिक जगत मँह, कुण तेरो नादान?

मेरो मेरो कर मर्‌यो, मेरो हुयो न कोय।
जद जग स्यूं जाणो पड्‌यो, संग चल्यो ना कोय॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स
३१-४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
☎ ०२२- २०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ८४०८६, ८४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४४, कार्तिक पूर्णिमा, ११ नवंबर, २०००**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2000,

Concessional rates of Postage under Licenced to post without Prepayment
Posting day- **Purnima of Every Month, Posted at Igatpuri-422403, Dist. Nashik**

If not deliverd please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) ८४०७६
फैक्स : (०२५५३) ८४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
E-mail: <dhamma@vsnl.com>